Chapter-7

" सप्तम- अध्याय "

(काव्य में प्रस्तुत सामाजिक एवं आर्थिक पक्ष)

साहित्य मानव-समाज के विचारों, भावों एवं संकल्पों की शाब्दिक अभिव्यक्ति है। कला को जीवन के लिए माननेवाले कवि या लेखक मानव - समाज के उत्कर्ष का चिन्तन करते रहते हैं। समाज का सर्वांगीण विकास उनका प्रायः लक्ष्य बन जाता है। कवि यद्यपि निरंकुश एवं स्वतंत्र चिन्तन करता है तथापि अपनी संवेदनशीलता के कारण वह युगीन सम-विषम परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। मानव-जीवन की विभिन्न गतिविधियों, जटिल समस्याओं, आशा-निराशाओं, मान्यताओं, आदर्शों आदि से प्रभावित होकर वह समाज के प्रायः वर्तमान यथार्थ का यथातथ्य चित्रण करता रहता है। साथ ही प्रतिभा सम्पन्न कवि इसके अतिरिक्त समाज के भावी सुखद निर्माण का भी चिन्तन करता हुआ यथोचित मार्गदर्शन प्रदान करता है। अर्थात् वह केवल वर्तमान ही नहीं भविष्य का भी चित्रण करता है। इस दृष्टि से वह समाज के उन्नायक, संप्रेरक व निर्माता के रूप में काव्य-साधना करता रहता है। इस तरह समाज का सूत्रधार बनकर वह समाज से अविच्छिन्न सम्बंध स्थापित करता है। युग कवि अपने काव्य में युगबोध को भली-भांति ग्रहण करता हुआ समस्त युगीन आवश्यकताओं, आशा-आकांक्षाओं को चित्रित करता रहता है। कवि जिस समाज से चेतना ग्रहण करता रहता है उसे अपने निजी संस्कारों व चिन्तन के धरातल पर आत्मसात करते हुए उसे पुनः सुन्दर व मधुर रूप में समाज के सम्मुख प्रस्तुत करता है। इस तरह व जन-जीवन के नीरस एवं शुष्क सत्य में सरसता भर देने का कार्य भी करता है। समाजगत कुंठाओं, घुटनों, पीड़ाओं आदि का यथातथ्य चित्रण करनेवाला कवि जब तक उनके समाधानकारी निर्माणमूलक चिन्तन का मार्ग प्रशस्त नहीं करता तब तक उसका काव्य चिरस्थायी या अमरता की कोटि में नहीं आ सकता। वर्तमान जीवन अत्यधिक जटिल एवं विडम्बनाओं से परिपूर्ण है। प्रतिदिन वह राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि विभिन्न परिस्थितियों से प्रभावित होता रहता है। अतएव जन-मानस पर उनकी क्रिया-प्रतिक्रिया होना अनिवार्य है। फलतः कवि भी, जो इसी समाज में रहता

है, अपना संवेदनशील प्रतिभाव व्यक्त किये बिना नहीं रहता । वह एक और समाज से प्रेरणा ग्रहण करता है तो दूसरी और उसे प्रेरणा प्रदान भी करता है । इस तरह कवि या साहित्यकार का समाज से अन्योन्याश्रित सम्बंध रहता है ।

उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश में जब हम सोहनलाल द्विवेदी के काव्य पर विचार करते हैं तो हम नि:संदिग्ध रूप से कह सकते हैं कि उनका काव्य युग की सर्वपक्षीय चेतना को लेकर लिखा गया है, वे कोरी कल्पना के कवि नहीं हैं।वे ऐसे जनवादी कवि हैं, जो कला को जीवन के लिए मानते हैं । तदर्थ मानव-समाज के उत्कर्ष का वे चिन्तन करते रहते हैं । एक और उनके काव्य में युगीन पीडा और यातनाओं का दारुण चित्रण मिलता है तो दूसरी और उसके समाधान का भी चिन्तन किया गया है । यद्यपि कवि के नाते वे निरंकुश एवं स्वतंत्र चेता हैं तथापि उनका कवि अधिकांशत: अपने संस्कारों एवं गांधीवादी चिन्तन के प्रभाव के कारण अहिंसात्मक चिन्तन करते हुए समाज व राष्ट्र की समस्या का समाधान उसी में ढूंढता है । यह निर्दिष्ट किया जा चुका है कि उनकी काव्य-साधना सन् १९२०-२१ ई० से प्रारंभ हुई। यह राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रारंभकाल होने से गांधी जी के नेतृत्व में विकसित चिन्तन-प्रक्रिया का उनके चिन्तन पर अधिक प्रभाव पड़ा । कवि की राष्ट्रीय रचनाओं का अनुशीलन करते समय यह लक्ष्य किया जा चुका है कि स्वाधीनता प्राप्ति के लक्ष्य की पूर्ति के संदर्भ में लिखी ये रचनाएं गांधी निर्दिष्ट अहिंसात्मक रीति-नीतियों के चिन्तन से परिपुष्ट हैं। राजनीतिक स्वतंत्रता के अतिरिक्त गांधी जी के ने समाज के नव-निर्माण के संदर्भ में भी प्रयास किया है । तदर्थ उन्होंने देश के सम्मुख रचनात्मक कार्यक्रम प्रस्तुत किया, जो उनके विशिष्ट चिन्तन से परिपुष्ट था । अत: यह पूर्णतया संभव है कि द्विवेदी जी के काव्य में समाज के उत्कर्ष के हेतु गांधी निर्दिष्ट रचनात्मक कार्यक्रम का प्रभाव परिलक्षित हो सके । तदर्थ प्रस्तुत अध्याय में उनके काव्य के सामाजिक व आर्थिक पक्षों पर विचार किया जा रहा है ।

गांधी जी ऐसी स्वाधीनता को कभी पसंद नहीं करते थे जिसमें पीड़ित

और शक्तिहीन व्यक्ति को शोषण और अन्याय से मुक्ति न मिली हो । भारत का भावी चित्र खींचते हुए उन्होंने कहा था कि 'मेरे स्वप्नों का स्वराज्य तो गरीबों का स्वराज्य होगा । ---- जीवन की वे सामान्य सुविधाएं गरीबों को भी अवश्य मिलनी चाहिए जिनका उपयोग अमीर आदमी करता है । मुझे इस बात में बिल्कुल भी संदेह नहीं है कि हमारा स्वराज्य तब तक पूर्ण स्वराज्य नहीं होगा, जब तक वह गरीबों को वे सारी सुविधाएं देने की पूरी व्यवस्था नहीं कर देता ।'[१] वस्तुत: गांधी जी अहिंसा पर आधारित एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते हैं जो सही अर्थों में प्रजातंत्रात्मक हो जिसका संचालन केन्द्र में बैठे हुए कुछ गिने-चुने व्यक्ति ही न करें, बल्कि यह तो नीचे से केन्द्र में बैठे हुए प्रत्येक गांव के लोगों द्वारा किया जाना चाहिए । तदर्थ उन्होंने ग्राम-पंचायत को इकाई मानकर पंचायत-राज्य को स्वीकार किया है । उसकी महत्ता का प्रतिपादन करते हुए वे लिखते हैं, 'जब पंचायत राज्य स्थापित हो जाएगा तब लोकमत ऐसे भी अनेक काम कर दिखायेगा जो हिंसा कभी नहीं कर सकती । जमींदारों, पूंजीपतियों और राजाओं की मौजूदा सत्ता तभी तक चल सकती है जब तक कि सामान्य जनता को अपनी शक्ति का भान नहीं होता । अगर लोग जमींदारी और पूंजीवाद की बुराई से सहयोग करना बंद कर दें तो वह पोषण के अभाव में खुद ही मर जाएगी ।'[२]

प्रस्तुत अवतरण में गांधी जी ने प्रमुखत: दो तथ्यों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है । एक तो सामान्य जनता को अपनी शक्ति का भान कराना अर्थात् उसमें निजी जागृति लाना तथा दूसरे जमींदार एवं पूंजीपतियों की शोषण-वृत्ति से असहयोग करना । दूसरे शब्दों में उनकी शोषण-प्रथा का उन्मूलन करना ।

पंचायत राज्य या ग्राम-स्वराज्य प्राप्त करने के लिए भारतीय ग्रामीण समाज का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि दृष्टिकोणों से पुनरुत्थान अपेक्षित था । राजनीतिक चेतना को जागृत करने के के संदर्भ में द्विवेदी जी के प्रयास को उनकी राष्ट्रीय रचनाओं के अंतर्गत लक्ष्य किया जा चुका है । गांधी जी की कोई भी

प्रवृत्ति चाहे सामाजिक हो या आर्थिक विकास की सनातन धर्म के धरातल पर ही आधृत होती है । तदर्थ ग्राम-निर्माण के अभियान में भी वे निर्माणकर्ता सत्याग्रहियों में पंच-प्रतिज्ञाओं(सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य) का स्वैच्छिक पालन अनिवार्य समझते हैं क्योंकि उनके विचार में अहिंसक सत्याग्रह ही एक अभूतपूर्व शस्त्र है जो राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं का सुखद समाधान प्रदान करता है । उसकी अप्रतिम शक्ति के संदर्भ में वे कहते हैं,"यह एक ऐसी शक्ति है जो मौन रूप से कार्य करती है और जिसकी गति धीमी दिखाई पड़ती है । किन्तु वास्तव में विश्व में ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो इतनी प्रत्यक्ष हो और जिसकी गति इतनी तीव्र हो । किन्तु कभी- कभी पाशविक शक्ति द्वारा प्राप्त की गई सफलता शीघ्रता से प्राप्त की गई दिखाई पड़ती है ।"[3] वास्तव में सत्याग्रही आत्मसंयमी एवं उदात्त जीवन दृष्टि लिये होता है जो समाज की किसी भी परिस्थिति में अलगाव की जगह एकीकरण, संघर्ष की जगह सौजन्य तथा घृणा की जगह प्रेम का अनुसरण करता है । वह निर्भीक होकर समाज में व्याप्त अन्याय, शोषण, घृणा, दुराचार,मद्यपान, चोरी, जुआरी, व्यभिचार आदि अनेक दूषणों को दूर करने का यत्न करता है । उसका प्रत्येक कार्य त्याग एवं आत्म-समर्पण की भावना से प्रेरित होता है ।

(क) सामाजिक पक्ष :

पं० सोहनलाल द्विवेदी की सामाजिक दृष्टि उपर्युक्त कार्यक्रम के अतिरिक्त भी समाज जीवन के अन्य पक्षों को लेकर चली है । यहां के समाज-जीवन में विकृतियाँ दीर्घकाल से विद्यमान थीं ।इसके अतिरिक्त नारी का उद्धार एवं उसका सामाजिक महत्व, वर्ग संघर्ष, रूढ़ियां, अंधविश्वास आदि समस्याएं जिन पर बहुत कुछ गांधी जी के पूर्व सांस्कृतिक पुनरुत्थान के परिणाम स्वरूप अनेक समाज-सुधारकों एवं साहित्यकारों ने निजी प्रयत्न कर उस दिशा में यथोचित यत्न किया था, तथापि इनमें राष्ट्रव्यापी सुधार आवश्यक था । तत्कालीन राजनीतिक गतिविधियों के परिणाम स्वरूप हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य एवं हरिजनों के उद्धार की समस्याएं भी राष्ट्र के सम्मुख तात्कालिक -

समस्याओं को समाधानकारी अभिव्यक्ति मिली है, तो कहीं रूढ़ियां, अंध-विश्वास, शोषण आदि अनेक परम्परागत समस्याओं के समाधान का भी प्रयास दृष्टिगत होता है। हिन्दू- मुस्लिम ऐक्य की, मानव-साम्य के सिद्धान्त पर, संप्रदाय से ऊपर उठकर निजी चेतना को पहचानने के रूप में इस प्रकार अभिव्यक्ति हुई है -

'मेरे हिन्दू औ' मुसलमान।
रे अपने को पहचान जान।
हम लड़ जाते हैं आपस में।
मंदिर मस्जिद हैं लड़ जातीं।
हम गड़ जाते हैं धरती में
मन्दिर मस्जिद हैं गड़ जातीं।
मन्दिर -मस्जिद से ऊपर हम
रे अपने को पहचान जान।'[४]

जब तक मनुष्य में चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, आत्मबोध जागृत नहीं होता तब तक सच्चे अर्थों में मानव-मानव में ऐक्य प्रस्थापित नहीं होता। ऐक्य के लिए कोई बाहरी दबाव सफल नहीं होता। आत्मबोध, जो भीतरी समझ है, वही चिरस्थायी उपाय समझा गया है। इस तथ्य की पुष्टि करते हुए कवि कहते हैं -

'आत्मबोध दो आत्मज्ञान दो,
मानव को जीवन महान दो।
जान सकूं अपने को वह प्रभु
तप बल उज्ज्वल दो।
जीवन उज्ज्वल दो।
मंगलमय बल दो।'[५]

गांधी जी ने हरिजनोद्धार की तत्कालीन युगीन समस्या के समाधान के लिए 'हरिजन' 'हरिजन सेवक' जैसे पत्र के द्वारा तथा 'हरिजन सेवक संघ' की स्थापना कर हरिजनों के सामाजिक महत्त्व को प्रतिष्ठित करने के लिए जो भारत भ्रमण करते हुए प्रयास किये, उससे उनके प्रति हमदर्दी का वातावरण निर्मित हुआ । वैसे धर्म एवं जातिवाद के कट्टर विरोधियों की ओर से विरोध भी प्रदर्शित हुआ, तथापि गांधी जी एवं अन्य सत्याग्रहियों के निरन्तर प्रयत्न के परिणामस्वरूप उन्हें समाज में स्थान मिलना प्रारंभ हुआ । मंदिरों में प्रवेश, कुओं पर पानी भरने की अनुमति आदि इसके सुखद परिणाम कहे जा सकते हैं । हरिजनों के मन्दिर प्रवेश के संदर्भ में पुजारी से अनुनय करते हुए द्विवेदी जी द्वारा लिखित गीत की कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं -

'खोलो मंदिर-द्वार पुजारी ।
मत ठुकराओ, चरणधूलि
लूँ, बार-बार जाऊँ बलिहारी ।
सच मानो, तुमको न कभी मैं
भूलूँगा, मेरे उपकारी ।
प्रभु की सुधि के साथ-साथ
आवेगी प्रतिदिन याद तुम्हारी ।
खोलो मंदिर द्वार पुजारी ।'[६]

उक्त पंक्तियों में द्विवेदी जी ने हरिजनोद्धार आंदोलन के अंतर्गत मंदिर-प्रवेश के प्रयास का भावनात्मक रूप प्रस्तुत किया है । इसमें उनका रचनात्मक दृष्टिकोण स्पष्ट होता है । सामान्यत: आन्दोलन में, चाहे वह व्यक्ति के विरुद्ध हो या समाज के विरुद्ध, आक्रोश, घृणा, विद्वेष आदि विध्वंसात्मक तीव्र भावावेग दृष्टिगत होता है, किन्तु यहां पुजारी या ब्राह्मण धर्म के विरुद्ध ऊहापोह नहीं है, मात्र अनुनय-विनय एवं प्रेमपूर्वक उपकार की भावना ही व्यक्त की गई है । सर्व-साधारण व्यक्ति ऐसी भावोत्तेजक स्थिति में अपना विवेक खोकर विद्वेषपूर्ण उक्ति कर देता है ।

परन्तु द्विवेदी जी का कवि यहां आत्मसंयमपूर्ण भावमय चिन्तन करते हुए रचनात्मक रहा है ।

इसके अतिरिक्त समाजगत कलुषित रूढ़ियां, अन्धविश्वास, अन्याय, अनीति आदि दूषणों को दूर करने के लिए द्विवेदी जी इस पुनीत कार्य में सम्मिलित होने का संकेत करते हुए नवयुग के कवियों को आह्वान देते हैं -

'गाओ मेरे युग के गायक ।
वह महाक्रांति का अभयगान,
फुलसें जिसकी ज्वालाओं में
अगणित अन्यायों के वितान ।
रूढ़ियाँ, अंधविश्वास घोर
जड़ जीवन का रे तिमिर चीर ।
आलोक सत्य का फैला दे
बह चले मुक्त जीवन-समीर ।'[७]

यहाँ कवि सुधारवादी चेतना से अनुप्राणित कहा जा सकता है । समाजगत कुरूढ़ियाँ आदि जो जन जीवन के वास्तविक विकास में अवरोधक हैं उनका उन्मूलन कर देना चाहता है जिससे सामाजिक जड़ जीवन में पुन: चैतन्य का संचार हो जाय । पराधीनता की शृंखलाओं को तोड़नेवाला कवि सामाजिक दासता की शृंखलाएँ भी तोड़ना पसंद करता है । इतना ही नहीं वह समाज के पीड़ित एवं दलित वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति के साथ रागात्मक सम्बंध की अनुभूति करता हुआ दग्ध समाज-जीवन में काव्य-सुधा का प्रवाह बहाने का आदेश देते हुए वे नवयुग के कवि से उद्बोधन करते हैं -

'पीड़ित प्राणों में बन गायन,
करो नींद मधु सुख का वर्षण,

वसुधा के जलते कण- कण में
अमृत प्रवाह बनो मेरे कवि ।[८]

समाज-सुधार की भावना के उद्देश्य से समाजगत अनुचित रूढ़ियों का उन्मूलन करने की अंधाधुंध चाह में कवि सामान्यत: विद्रोहात्मक स्वर फूंकने का यत्न करता है । और इस तरह समाज के दलित एवं पीड़ित वर्ग के प्रति अपनी संवेदना व्यक्त करता है, किन्तु द्विवेदी जी का कवि यहां न केवल उक्त संवेदना ही व्यक्त करता है, अपितु समाज के कण-कण के प्रति रागात्मक सम्बंध की अनुभूति करता हुआ उसकी पीड़ा से व्यथित सच्चे अर्थों में पीडा-शमन का रचनात्मक चिन्तन करता हुआ दृष्टिगत होता है । मानव समाज की सुख-शांति का अहिर्निश चिन्तन करनेवाला कवि मानो उसके पीड़ायुक्त घावों पर चन्दन का अनुलेपन करने का यत्न करता है ।

समाज की पीड़ा, क्लेश आदि को अपनी पीड़ा एवं व्यथा समझनेवाला कवि उसे दूर करने के संवेदनाजन्य चिन्तन करता हुआ स्वभावत: तत्युगीन मार्क्सवादी चिन्तन से भी प्रभावित होता है ।

वस्तुत: मार्क्सवादी चिन्तन भी मानव-साम्य में मानते हुए शोषणआदि समाजगत दूषणों को दूर करने तथा दलितोद्धार का चिन्तन करता है ।जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है , कवि स्वतंत्रचेता होता है । युगीन लघु-गुरु कोई भी चेतना-प्रवाह उसके संवेदनशील मानस को प्रभावित कर सकता है। यह उल्लेखनीय है कि मार्क्सवादी चिन्तन का, विशेषकर जो करुणा पर आधारित है और दलितों की पीड़ा आदि को दूर करने का पक्ष है, वे समर्थन करते हैं ।दोनों में चिन्तनगत साम्य होते हुए भी, साधनगत वैषम्य है । मार्क्सवादी चिन्तन दलितोद्धार के लिए घृणा, नफरत, आक्रोश, विद्वेष आदि विद्रोहात्मक साधनों का उपयोग करके

येनकेनप्रकारेण सिद्धि चाहते हैं, जबकि द्विवेदी जी गांधीवाद पर आधारित रचनात्मक मार्ग का अनुसरण करते हुए विशुद्ध मानव-प्रेम का अभिभावन करते हैं और तदनुसार दलितों का उद्धार करना पसंद करते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि वे कार्ल मार्क्स के प्रति विद्वेष करते हैं। उनके दलितोद्धार के चिन्तन के प्रति उनका श्रद्धा-भाव इस तरह व्यक्त हुआ है -

'तुम जग जीवन के नव विहान।
तुम महाक्रांति के अग्नि-गान।
पूंजीपतियों के महानाश,
दीनों दलितों के नवप्रकाश।
साम्राज्यवाद के ध्वंस-गान
तुम जग जीवन के नव विहान।
\+ + +
तुम करुणा की कातर पुकार,
कृषकों श्रमिकों की अश्रुधार,
तुम आश्वासन, तुम महात्राण।
तुम जग जीवन के नव विहान।'[९]

और- 'वह वर्गहीन नव स्वर्ग आज
इस भूतल में ले रहा जन्म
जिनका श्रम है, उनकी धरती
जिनका हल है उनकी धरती
इतने दिन बाद अभागों को
सौभाग्य चला है अपनाने
अब सृजन करो अपने मन का मन
ले वैभव के सुख साधन
ललकार रहा है वर्तमान
हैं कहां देश के दीवाने ?'[१०]

~~क्रमिक~~ वर्गहीन समाज-नव-रचना का स्वप्न लेकर मार्क्सवाद जो भारतीय साहित्य में आया उसका भलीभांति स्वागत हुआ । आधुनिक हिन्दी साहित्य में इसी चिन्तन पर आधारित प्रगतिवादी साहित्य का सर्जन होने लगा । द्विवेदी जी का कवि भी इस मार्क्सवादी चिन्तन से प्रभावित अवश्य हुआ है, किन्तु एक सीमा तक ही प्रभावित है । उसके रचनात्मक पक्ष का ही वह समर्थन करता है, उसके विद्रोहात्मक, विध्वंसकारी पक्ष का नहीं । जैसा कि लक्ष्य किया गया है, वह घृणा और विद्वेष के स्थान पर विशुद्ध मानव-प्रेम का समर्थक है । इससे यह सिद्ध होता है कि यद्यपि द्विवेदी जी गांधीवादी चिन्तन से अधिकांशत: प्रभावित होकर काव्य-सर्जन करते हैं, तथापि स्वतंत्रचेता कवि के रूप में वे युगीन अन्य चेतना-प्रवाहों से भी एक सीमा तक ही सही, प्रभावित होते दिखाई पड़ते हैं । `दीनबंधु एण्ड्रूज` `सुभाषचन्द्र बोस` आदि के प्रति अपनी संवेदना संभवत: इसी धरातल पर व्यक्त करते दृष्टिगत होते हैं । रचनात्मक सिद्धान्त को अपनाते हुए कवि समाज-नव-निर्माण के लिए नित्य प्रयत्नशील रहे हैं । तभी तो स्वातंत्र्योत्तर काल में राष्ट्र- निर्माण के सामाजिक कार्य में अवरोध उत्पन्न करनेवाले समस्त चेतना प्रवाहों का वे विरोध करते रहे हैं । `मुक्तिगंधा` के अन्तर्गत शासकों एवं पूंजीपतियों के शोषणकारी प्रयत्न एवं भ्रष्टाचार के विरुद्ध पुन: शंखनाद करते ~~रहते~~ रहते हैं । सच्चे अर्थों में जन-समाज के शुभचिंतक कवि के रूप में अत्यन्त निर्भीकता एवं निरीहता के साथ अपना विरोधी स्वर बुलंद करते हैं जिसका सविस्तर अध्ययन-अनुशीलन विगत पंचम अध्याय में किया जा चुका है । द्विवेदी जी सामाजिक सुधार चाहते हैं किन्तु ध्वंसात्मक मार्ग से नहीं, रचनात्मक मार्ग से । घृणा और नफरत के आधार पर नहीं, विशुद्ध मानव-प्रेम के आधार पर अत्यन्त संवेदना के साथ । `बेतवा का सत्याग्रह` काव्य में उनकी सामाजिक सुधारवादी जीवन दृष्टि परिलक्षित की जा सकती है । नारी-शिक्षा और उसके समाजगत महत्व के लिए गांधी जी ने कुछ प्रयत्न किये । यहां तक कि कतिपय महिलाओं को अपने आश्रम में भी सम्मिलित किया था, किन्तु द्विवेदी जी का कवि इस ~~मर~~ विषय पर प्राय: मौन है ।

(ख) ~~(अ)~~ आर्थिक पक्ष :

आधुनिक भौतिकवादी जीवन दृष्टि के कारण सम्प्रति अर्थोपार्जन ही प्राय: जीवन का लक्ष्य बन गया है । आज विश्व की समस्त मानव-जाति अर्थ को केन्द्र में रखकर अपना जीवन तदनुकूल निर्मित करने का यत्न कर रही है । सभी राष्ट्र आर्थिक उन्नति एवं समृद्धि को ही वास्तविक विकास मानकर विश्व की तुलना में अपनी आर्थिक सम्पन्नता सिद्ध करने का यत्न कर रहे हैं । और इसी से अपनी महत्ता को प्रतिपादित करने का यत्न करते हैं । मानव-जीवन की समस्त गतिविधियों एवं जीवन-व्यापारों में अर्थ ही प्रधान तत्व समझा जाने लगा है । अर्थ ही मनुष्य की प्रत्येक वृत्ति और प्रवृत्ति का संप्रेरक बल बन गया है । उषा से संध्या तक का मानवजीवन प्राय: अर्था-वलंबित हो गया है । यद्यपि अर्थ का महत्व सार्वजनीन तथा सार्वकालिक रहा है तथापि आधुनिक युग में उसकी मात्रा सविशेष हो गई है । अतीतकालीन भारतीय जन-जीवन में जीवन के जो चार पुरुषार्थ माने गये, उनमें भी अर्थ को स्थान मिला है, किन्तु भारतीय मनीषियों ने इसे द्वितीय स्थान दिया है । अर्थात् धर्म को प्रथम स्थान देते हुए उसी की आधार शिला पर अर्थोपार्जन आवश्यक समझा गया । आधुनिक जन-जीवन में प्राय: धर्म के स्थान पर अर्थ को ही महत्व प्रदान किया जाने लगा । आज समाज- जीवन के अस्तित्व एवं उत्कर्ष का मूलाधार अर्थ ही बन गया है । तभी तो वर्णाश्रम धर्मों के स्थान पर सम्प्रति अर्थ के आधार पर धनिक और गरीब जैसे समाज के दो ही वर्ग बन रहे हैं । आधुनिक यंत्रवाद एवं उससे निष्पन्न पूंजीवाद के निर्बाध विस्तार के परिणामस्वरूप अर्थ ही मानवजीवन का सर्वस्व हो गया है । अर्थ की इस सीमातीत महत्ता ने मानव जीवन में कतिपय समस्याओं का भी निर्माण ~~किया है~~ किया है । ईर्ष्या, जलन, भ्रष्टाचार, व्यभिचार आदि के अतिरिक्त शोषण का दारुण विषचक्र भी इसी की उपज है । शोषण के कारण एक वर्ग जो धनिक है अधिकाधिक धनिक बनता जा रहा है, जबकि शोषित अधिकाधिक गरीब और दु:खी बनता जा रहा है । वैसे जीवन में अर्थ की महत्ता है किन्तु आधुनिक संदर्भ में अर्थ ही सब धर्मों का मूल बन जाय तो इससे मानव-समाज में विकृतियां एवं असमतुला उत्पन्न

हो जाती है । भारतीय मनीषियों ने संभवत: इसी समतुला को बनाये रखने तथा अनावश्यक विकृतियों से मानव-जीवन को अलिप्त रखने के लिए उसे धर्म की आधार-शिला प्रदान की होगी ।

भारत मूलत: कृषि प्रधान देश होने से अपनी ग्रामीण सभ्यता व संस्कृति का देश है । पहले भारतीय गांव आत्मनिर्भर थे और ~~न~~ शहरों की आवश्यकताओं की भी पूर्ति करते थे । किन्तु व्यापारी मनोवृत्तिवाले विदेशी शासकों ने जबसे अर्थोपार्जन के स्वार्थ को सिद्ध करने के उद्देश्य से अपना माल जबर्दस्ती भारतीय गांवों में भरा और स्वदेशी अर्थात् भारतीय गांवों में उत्पन्न माल की पैदावार घटाई, तब से भारतीय गांव गरीब और परावलंबी होते गये । फलत: गांवों में बेकारी, भुखमरी एवं गरीबी का साम्राज्य शनै: शनै: फैलता गया । विदेशियों की शोषणवृत्ति ने पूंजीपतियों एवं जमींदारों को भी शोषण के लिए प्रेरित किया । गांधीजी ने जब भारतीय राष्ट्रीय मंच पर पदार्पण किया तब भारतीय गांव मृतप्राय अवस्था में थे । तभी तो उन्होंने राजनीतिक स्वाधीनता के उपरान्त सच्चे अर्थों में स्वराज्य-प्राप्ति के निमित्त ग्राम-स्वराज्य या ग्राम-पुनर्निर्माण का कार्य करने का संकल्प किया । तदर्थ सर्वप्रथम विदेशी माल का परित्याग और स्वदेशी माल को अपनाना परम आवश्यक था, जिसके अभाव में आर्थिक क्रांति नहीं हो सकती । यद्यपि गांधी जी के पूर्व स्वदेशी आंदोलन ने (बंग भंग के पश्चात्) जन्म लिया था, तथापि उसे राष्ट्रव्यापी स्वरूप प्राप्त न हुआ । गांधी जी ने इसकी अनिवार्यता को समझकर उसे एक व्यवस्थित अभियान के रूप में राष्ट्रव्यापी बनाया । स्वदेशी आंदोलन के साथ-साथ चरखा व खादी अभियान भी उन्होंने प्रारम्भ किया ।

राष्ट्रकवि द्विवेदी जी की राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक रचनाओं का अनुशीलन करते हुए यह लक्ष्य किया जा चुका है कि उनकी आशा-आकांक्षाओं आदि को गांधी निर्दिष्ट चिन्तन के धरातल पर यथोचित अभिव्यक्ति मिली है । अत: यह भी सम्भव है कि गांधी जी के द्वारा संचालित ग्राम-पुनर्निर्माण के अभियान को ~~अने~~ भी अभिव्यक्ति

दी गई हो । दूसरे शब्दों में ग्रामीण- अर्थ- व्यवस्था में आमूल क्रांति लाने के गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम को कवि ने अपने ढंग से अभिव्यक्त किया हो । जैसा कि उपरि-निर्दिष्ट विश्लेषणों में लक्ष्य किया गया है, मानव-समाज की समस्त गतिविधियों एवं जीवन व्यापारों में सम्प्रति अर्थ- व्यवस्था की जबर्दस्त पकड़ है, राष्ट्र- निर्माण के अभियान में उसके आर्थिक पक्ष का सर्वाधिक महत्व स्वयं सिद्ध है । द्विवेदी जी के काव्य में उक्त अभियान को दो रूपों में अभिव्यक्त किया गया है -

१- दलितों के प्रति संवेदना
२- ग्रामोत्थान

(१) दलितों के प्रति संवेदना :

कवि संवेदनशील होता है । जन-समाज के सच्चे प्रतिनिधि एवं प्रवक्ता के रूप में समाजगत लघुतम धुम्ररेखा भी कवि के मानस को व्यथित कर सकती है । साम्राज्यवादियों की शोषणकारी रीति-नीति के परिणामस्वरूप पराधीनकालीन भारतीय जन-समाज की जो आर्थिक विपन्नता दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही थी, उससे कृषक तथा श्रमजीवियों की दयनीय स्थिति उत्पन्न हो गई थी । ग्राम-निर्माण की गांधी जी की योजना के अंतर्गत रचनात्मक कार्यक्रम पर विश्वास करते हुए द्विवेदी जी ने राष्ट्र-निर्माण के कार्यका अभिनन्दन-समर्थन किया है । जैसा कि संकेत किया गया है कि भारत कृषि-प्रधान देश है और भारत की अधिकांश प्रजा ग्रामों में निवास करती हुई कृषि एवं मजदूरी के द्वारा ही अर्थोपार्जन कर जीवनयापन करती है । तदर्थ उनका वास्तविक उत्थान किये बिना सच्चे अर्थों में न स्वराज्य प्राप्ति हो सकती है, न राष्ट्र-निर्माण । समाज-निर्माण का विकट कार्य तभी संभव हो सकता है, जब निर्माणकर्ता के दिल में शोषित एवं पीड़ित वर्ग के प्रति निर्बाध एवं निस्वार्थ मानव-प्रेम निहित हो । इसी प्रेमानुभूति से प्रेरित वह उसकी पीड़ाओं को देखकर व्यथित होता है । और अकारण उन पीड़ाओं को दूर करने के लिए प्रयत्नशीलहोता है ।

द्विवेदी जी का कवि इसी भावानुभूति के धरातल पर चिन्तन करता हुआ समाज-निर्माण का आकांक्षी है। दलितों की पीड़ाओं के प्रति अपनी संवेदना को व्यक्त करते हुए वे एकाधिक मार्मिक एवं हृदयग्राही चित्र इस तरह अंकित करते हैं -

'नित फटे चिथड़े पहने जो
हड्डी पसली के पुतलों में
असली भारत है दिखलाता
नर कंकालों की शकलों में।
दिन-रात सदा पिसते रहते
कृषकों में औ मजदूरों में
जिनको न नसीब नमक रोटी
जीते रहते उन शूरों में।
भूखे ही जो हैं सो रहते
विधना के निठुर नियावों में
है अपना हिन्दुस्तान कहां ?
वह बसा हमारे गांवों में।
चूती जिनकी खपरैल सदा
वर्षा की मुसलाधारों में
ढह जाती है कच्ची दिवार
पुरवाई की बौछारों में
उन ठिठुर रहे, उन सिकुड़ रहे
थर-थर हाथों में पांवों में
है अपना हिन्दुस्तान कहां ?
वह बसा हमारे गांवों में।'[११]

इसके अतिरिक्त किसान, मजदूर व भिखमंगों की दारुण स्थिति का व्यथापूर्ण

चित्र अंकित करते हुए वे लिखते हैं -

'वह किसान, सामने खड़ा है
जो युग युग से पिसता आया
भाग्य शिला पर, विजित प्रताड़ित
अपना मस्तक घिसता आया ;
अपनी आँतों पर अकाल ले
स्वयं बुभुक्षित, विश्व जिलाया,
अंतिम श्वासें आज गिन रहा
किसने इस ली कंचन काया ?
सर्वनाश लाया अपने घर
महामूढ़ मानव अभिमानी
तुम कहते हो गीत सुनाऊँ
आज रुद्ध है मेरी वाणी ।'[१२]

मजदूर का कंकाल युक्त चित्र अंकित करते हुए वे कहते हैं -

'वह मानव-कंकाल खड़ा है
फटे चीथड़े देह लपेटे,
दुर्गन्धित जर्जर टुकडे से
मानवपन की लाज समेटे,
तन क्या है ? कंकाल-मात्र ।
यह शव जो जा मरघट पर लेटे ।'[१३]

नंगों-भिखमंगों की दारिद्र्यपूर्ण स्थिति का चित्र इस प्रकार है -

'हाहाकार मचा पग-पग में
धधकी महा उदर की ज्वाला

नंगों -भिखमंगों की टोली
जपती दो टुकडों की माला ;
देखा खड़ा कंगाल सामने
मन की सब साधें मुरझानी
तुम कहते हो गीत सुनाऊँ
आज रुद्ध है मेरी वाणी ।'[१४]

इस प्रकार के संवेदनाजन्य चित्र कवि की 'युगाधार' कृति के अन्तर्गत 'हलधर से' तथा 'मजदूर' शीर्षक रचनाओं में भी ~~मिलते~~ मिल सकते हैं । इस तरह कृषक, मजदूर आदि जो गांवों की रीढ़ हैं, प्राण हैं, जिनके जीवन में सदैव निराशा, आंसू और विपदाएं ही भरी हैं, उन्हें वास्तविक स्थिति का ज्ञान कराने के उपरान्त उनकी शक्ति का परिचय कराते हुए आत्मबल जागृत करने का कवि यत्न करते हैं जिससे उनकी स्वत्वहीन मन:स्थिति में परिवर्तन होते-होते आत्म विश्वास उत्पन्न हो जाय । एक बार आत्मविश्वास उत्पन्न हो गया तो कठिन से कठिन से कठिन कार्य भी व्यक्ति के लिए सरलतम बन जाता है । देश के अर्थ तंत्र में किसान के महत्वपूर्ण योगदान को अंकित करते हुए उसमें आत्मगौरव की चेतना का वे संचार करते हैं - क्योंकि संवेदना प्रकट करने मात्र से काम नहीं चल सकता । कृषि प्रधान देश के आर्थिक उत्थान के लिए आवश्यक है किसान का आत्म प्रबुद्ध होना -

' वे नभ चुम्बी प्रासाद भवन
जिनमें मंडित मोहक कंचन
ये चित्रकला-कौशल-दर्शन
ये सिंह -पौर तोरन, बन्दन
गृह-टकराते जिनसे विमान
ये आन बान, ये सभी शान

वह तेरी दौलत पर किसान ।
वह तेरी मेहनत पर किसान ।
वह तेरी हिम्मत पर किसान ।
वह तेरी ताकत पर किसान ।'[१५]

'हलधर से' शीर्षक रचना के अंतर्गत भी कवि कृषक की शक्ति को जागृत करते हुए कहते हैं -

'तुम्हें नहीं क्या ज्ञात ? तुम्हीं हो
जननी की अगणित सन्तान ?
तुम्हें नहीं क्या ज्ञात ? तुम्हीं पर
निर्भर है अपना उत्थान ।
तुम्हें नहीं क्या ज्ञात ? राष्ट्र के
तुम हो कर्मठ कर्णधार,
\+ \+ \+
बिना तुम्हारे उठे, न उठ
सकती है उन्नति की मीनार ।'[१६]

कवि को विश्वास है कि कृषि प्रधान देश के कृषकों की सभी समस्याएं उनके सशक्त साधन-'हल' के द्वारा ही सुलझ जावेंगी । अत: हलका गौरव-गान करते हुए कृषक की चेतना जागृत की जा रही है । जागृत कृषक की समस्याओं का समाधान 'हल' ही है कहकर कवि लिखते हैं -

'हल है झंडा सदा तुम्हारा
हल के गाओ गौरव गान
हल से हल हों सभी समस्या
सहल बने अपना मैदान ।
\+ \+ \+

कितने भोले हो गरीब हो
इसका तुमको जरा न ध्यान
अपनी ही अज्ञान दशा में
पाते हो तुम कष्ट महान ।
तुम अपने को पहचानो तो
फिर न रहेगा यह दुःख दैन्य
निर्बल की सब बलि देते हैं
बली सजाते रण- सैन्य ।'[१७]

वास्तव में जो युगीन विषम परिस्थितियों तथा अपने दुःख-दैन्य को परिलक्षित कर स्वयं जागृत नहीं होता और अपनी निर्बल एवं असहायावस्था में सोया रहता है वह अपना अस्तित्व तक मिटा देता है । उपरिनिर्दिष्ट पंक्तियों में कवि इस तथ्य की ओर संकेत करके कृषकों के आत्मबल को जगाते हुए आपत्कालीन परिस्थितियों का प्रतिकार करने की प्रेरणा देते हैं । कृषक की तरह मजदूर को भी जगाते हुए उसकी शक्ति का अनुभव करने की प्रेरणा प्रदान करते हैं । यथा -

'घूमा करती नंगी दुनिया
मिलता न अन्न भूखों मरती
मजदूर ! भुजायें जो तेरी
मिट्टी से नहीं युद्ध करतीं ।
तू छिपा राज्य उत्थानों में
तू छिपा कीर्ति के गानों में
मजदूर ! भुजायें तेरी ही
दुर्गों के श्रृंग उठानों में

तू ब्रह्मा विष्णु रहा सदैव
तू है महेश प्रलयंकर फिर
हो तेरा तांडव शंभु ! आज
हो ध्वंस, सृजन मंगलकर फिर ।'[१८]

इन पंक्तियों में कवि ने दो बातें कहीं हैं । मजदूर अद्यावधि ब्रह्मा और विष्णु की तरह समाज के सर्जक एवं पालक के रूप में ही जीवित रहा है किन्तु आज शोषण एवं उत्पीड़न का उन्मूलन करने के लिए उसे प्रलयंकर शंकर बनकर विध्वंसकारी तांडव नृत्य करने की प्रेरणा दी गई है । यहां उल्लेखनीय है कि द्विवेदी जी हिंसक बल पर विश्वास करनेवाले विध्वंसकारी तान छेड़नेवाले अन्य कवियों की तरह विद्रोह का स्वर नहीं फूंकते, अपितु उनका दृष्टिकोण सर्वत्र रानात्मक रहा है । वे मंगलकर सृजन करने के महद् उद्देश्य से वर्तमान में प्रवर्तित शोषण आदि समाज-विरोधी रीति-नीतियों का विध्वंस चाहते हैं । साम्राज्यवादियों तथा पूंजीपतियों ने अपनी शोषण-कारी नीतियों से भारत की जो दुर्दशा की है उसका चित्र खींचता हुआ कवि का आक्रोश दृष्टव्य है -

'हड्डी-हड्डी पसली-पसली
निकली है जिनकी एक-एक
पढ़ालो मानव, किस दानव ने
ये नर-हत्या के लिखे लेख ?
पी गया रक्त, खा गया मांस
रे कौन स्वार्थ के दावों में
है अपना हिन्दुस्तान कहां ?
वह बसा हमारे गांवों में ।'[१६]

यह ध्यातव्य है कि उक्त पंक्तियों में जहां शोषकों की शोषणकारी

नीति के परिणाम का चित्रण किया गया है वहां उनकी उन नीतियों के प्रति कवि ने आक्रोश व्यक्त किया है किन्तु शोषकों के विध्वंस का उल्लेख नहीं किया है। 'पढ़ लो मानव' कहकर समूचे समाज का ध्यान आकर्षित किया है और शोषकों के कृत्य को समाज की संवेदना का विषय बनाया है। यहां गांधी जी के रचनात्मक चिन्तन का प्रभाव परिलक्षित होता है, मार्क्सवादी घृणा एवं विद्वेषयुक्त विध्वंस-कारी चिन्तन नह का नहीं।

पूर्ववर्ती पृष्ठों में यह संकेत कर आये हैं कि गांधी जी राष्ट्र-निर्माण के कार्य की सफलता के लिए चाहते थे कि समाज-सेवकों को उन कृषकों, मजदूरों आदि दलित और असहाय व्यक्तियों के समीप जाकर उनका-सा जीवनयापन करते हुए भावापन्न स्थिति में उनको सहयोग देना चाहिए। तदर्थ उन्हें शहरों को छोड़कर गांवों में जाकर निवास करना चाहिए। गांधी जी ने ग्रामोद्धार के उद्देश्य से सेवाग्राम में निवास किया था। द्विवेदी जी भी, जो ग्रामीण समस्याओं से सदैव परिचित रहे हैं, उनका समाधान करने के लिए 'झोंपड़ियों की ओर' चलने की प्रेरणा देते हैं। धनिक और निर्धन मनुष्यों के जीवन का तुलनात्मक चित्र प्रस्तुत करते हुए समाज-सेवकों को अन्याय एवं अनीतिपूर्ण दुःख-दैन्य को मिटाने के लिए झोंपड़ियों की ओर चलने का संदेश देते हैं। यथा -

'उनके फटे चिथड़े देखो
अपने वस्त्र विभवशाली
उनकी रोटी नमक निहारो
अपनी खीर भरी थाली।
उनके कुंके छ टैंट निहारो
अपनी बसनी धनवाली
उनके सूखे खेत निहारो
अपनी उपवन हरियाली।

यह अन्याय अनीति मिटाओ
युग-युग का दुःख दैन्य दलो
महलों को भूलो प्यारे ।
अब झोंपड़ियों की ओर चलो ।'[20]

वर्तमान युगीन दलितों की दयनीय स्थिति, शोषकों की शोषणकारी प्रवृत्ति एवं दलितों की चेतना को उजागर करते हुए उन्हें निजी शक्ति का परिचय करानेवाली विभिन्न भूमियों के ऐसे अन्य चित्र ~~(भैरवी--के-अंतर्गत)~~ ('युगाधार' के अंतर्गत) 'सेवाग्राम', 'सेवाग्राम की आत्मकथा', 'प्रभाती' के अंतर्गत 'होलिका', 'प्रस्तावना' तथा ('भैरवी' के अंतर्गत) 'नूतनवर्ष' जैसी रचनाओं में भलीभांति मिलते हैं ।

राष्ट्रकवि द्विवेदी जी एक ओर जहाँ माँ भारती की भावापन्न होकर पूजा, अर्चा एवं वंदना करते हैं, वहाँ दूसरी ओर उसे क्षुधित एवं दरिद्र देखकर अत्यधिक व्यग्र भी हो जाते हैं । उसकी अवदशा का चित्र अंकित करते हुए वे पूर्व-वैभव को भी निर्दिष्ट करते जाते हैं -

'अन्नपूर्णे ! तुम क्षुधित हो ?
फिर न क्यों मानस व्यथित हो ?
देवि ! यह दुर्दैव कैसा ?
आज तुम रजवासिनी !
है फटा अंचल लहरता,
बन दरिद्र ध्वजा फहरता,
रत्न आभरणे ! बनी तुम
आज पंथ भिखारिणी ।'[21]

इसके अतिरिक्त `युगागति` कृति में इसी प्रकार के `जननी आज अर्ध-वात-वसना`, `आज आर्त विषण्ण दीना` आदि शीर्षक रचनाओं में मातृभूमि की अवदशा के चित्र मिल सकते हैं।

(२) ग्रामोत्थान :

हमने देखा कि द्विवेदी जी दलित वर्ग के प्रति निजी व्यथापूर्ण संवेदनाओं को व्यक्त करते हुए उनकी चेतना को जागृत करने का यत्न करते हैं। साथ ही उनमें आत्म-विश्वास एवं उत्साह भी जागृत करते हैं। इस विश्वास की चेतनामयी भित्ति पर समाज-निर्माण का भवन निर्मित करने का भी यत्न करते हैं। वे आस्था, विश्वास, आशा-आकांक्षा और निर्माण के कवि हैं, विध्वंस के नहीं। यदि वे समाजगत ताप-क्लेश का विध्वंस चाहते हैं तो जैसा कि निर्दिष्ट किया गया है, मंगलकारी निर्माण के निमित्त। ये विसर्जन के नहीं सर्जन के कवि हैं। गांधी जी ने जब समाज नव-रचना के निमित्त ग्राम-विकास के रचनात्मक नूतन प्रयोग के रूप में वर्धा के निकटवर्ती `सेगांव` को पसंद किया तब साबरमती आश्रम छोड़कर `सेगांव` में स्थायी निवास के लिए आते हुए बापू का भव्य स्वागत करने का कवि ने प्रयास इसलिए किया है कि ग्राम-निर्माण या ग्रामोत्थान का वास्तविक एवं सुव्यवस्थित अभियान यहीं से प्रारंभ होता है। यथा:-

`आओ नवयुग के निर्माता।
आओ नव-पथ के निर्माता।
हैं जीर्ण शीर्ण ये ग्राम
जहाँ युग युग से छाया अंधकार,
ये रौरव भव में बसे हुए
सुन लो तुम इनकी भी गुहार।
+ + +

ग्रामों का नव- उत्थान चला
पददलितों का अरमान चला
आत्माहुति का बलिदान चला ।'[22]

और- 'ओ दुर्बल दलितों के क्रांति-घोष
तुम पद दलितों के शक्ति कोश ।
मृत जीवन के तुम जन्म-प्राण ।
तुम नव-संस्कृति के नव- विधान ।'[23]

सेगाँव (सेवाग्राम) में स्थायी निवास करके गांधी जी ने ग्राम-निर्माण के लिए अपने रचनात्मक कार्यक्रमों के आधार पर नूतन प्रयोग आरंभ कर दिये । अब तो समाज व राष्ट्र का ध्यान इस गांव एवं वर्धा के निकट स्थापित विविध ग्रामोद्योगों की ओर जाने लगा । फलत: ग्रामोत्थान की नूतन जीवन दृष्टि राष्ट्र में विकसित होने लगी । गांधी जी के इन विविध प्रयोगों के कारण सेवाग्राम नूतन शक्ति एवं प्रेरणा का केन्द्र बन गया । सेवाग्राम की इस तरह राष्ट्रव्यापी महत्ता को अंकित करते हुए द्विवेदी जी लिखते हैं -

' है यही देश का हृदय तीर्थ
है यही देश का हृदय प्राण,
हैं उठते यहीं विचार दिव्य
जो करते जनगण राष्ट्रत्राण ।
नवयुग के नये विधाता की
यह है अजीब छोटी बस्ती,
जिसमें नवीन जीवन का क्रम
जिसमें नवीन दुनिया हँसती ।
यह तपोभूमि, यह कर्मभूमि
यह धर्मभूमि है तेजमयी
जिसमें सुलझाई जाती हैं
सब जटिल ग्रंथियाँ नई- नई ।

यह शक्ति केन्द्र, प्रेरणा केन्द्र
अर्चना केन्द्र, साधना केन्द्र ।'[२४]

द्विवेदी जी की कामना है कि सेवाग्राम जैसे विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था वाले, शोषणमुक्त तथा आत्मनिर्भर ग्राम संपूर्ण राष्ट्र में निर्मित हो जाय तो वास्तव में राष्ट्र में सुख-सम्पन्नता युक्त स्वराज्य की प्राप्ति हो सके । भारत का उजड़ा वृन्दावन पुन: हराभरा हो जाय । यथा:-

'सेगाँव बने सब गाँव आज
हममें से मोहन बने एक
उजड़ा वृन्दावन बस जावे
फिर सुख की वंशी बजे नेक ।
गूँजें स्वतंत्रता की तानें
गंगा के मधुर बहावों में
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ
वह बसा हमारे गाँवों में ।'[२५]

निर्माण मूलक आर्थिक क्रांति लाने के लिए गांधी जी ने प्रमुखत: रचनात्मक कार्यक्रम पर आधारित निम्नलिखित तथ्यों पर अधिक बल दिया जिससे प्रत्येक गाँव आत्मनिर्भर एवं आत्मनियंत्रित बन सके और वास्तविक ग्रामोत्थान का स्वप्न साकार हो सके । ये हैं -

१) शरीर श्रम
२) विकेन्द्रित अर्थ व्यवस्था ।

(१) शरीर श्रम :

हम अनुभव कर रहे हैं कि सम्प्रति बुद्धिजीवी लोग बिना किसी श्रम के येनकेन-प्रकारेण धन प्राप्ति करने के लिए पागल-से हो रहे हैं । इस अंधाधुंध दौड़ में समाज की

आर्थिक समतुला नहीं रह पाती । शरीर श्रम की मानव-जीवन में महत्ता का विस्मरण हो जाने पर शोषण की वृद्धि हो जाती है । अत: कोई भी राष्ट्र गरीबी एवं बेकारी का शिकार हो सकता है । इस महत्वपूर्ण तथ्य को समझाते हुए गांधी जी लिखते हैं, 'रोटी के लिए हर एक मनुष्य को मजदूरी करना चाहिए, शरीर को झुकाना चाहिए यह ईश्वर का कानून है । ---- यज्ञ किये बिना जो खाता है, वह चोरी का अन्न खाता है । यहाँ यज्ञ का अर्थ स्वयं की मेहनत या मजदूरी (पसीने की कमाई) ही शोभता है । जो मजदूरी नहीं करता उसे खाने का क्या हक है ? बाइबिल भी कहती है, 'अपनी रोटी तू अपना पसीना बहाकर कमा और खा ।'[२६] शरीर श्रम के धर्म का पालन करने पर समाज की अंत: रचना में मूक क्रांति हो जाएगी जो संग्राम की अपेक्षा सेवा के आदर्श पर आधारित होगी । शरीर श्रम की अनिवार्यता पर बल देते हुए गांधी जी कहते हैं, 'मैं इससे ज्यादा उदात्त और ज्यादा राष्ट्रीय किसी दूसरी चीज की कल्पना नहीं कर सकता कि प्रतिदिन एक घंटा हम सब कोई ऐसा परिश्रम करें जो गरीबों को करना ही पड़ता है और इस तरह उनके साथ और उनके द्वारा सारी मानव जाति के साथ अपनी एकता साधें ।'[२७] इस प्रकार उनके विचार में आर्थिक व सामाजिक एकता व समानता स्थापित करने का माध्यम शरीरश्रम है । शरीरश्रम के महत्व को समझकर श्रम करनेवाला व्यक्ति अपरिग्रही होगा जो सदैव सादगीपूर्ण जीवन व्यतीत करेगा । इसी सिद्धान्त के आधार पर गांधी जी ने पूंजी-पतियों और जमींदारों के लिए 'ट्रस्टीशिप' का सिद्धान्त प्रस्तुत किया जिससे वे न्यूनतम आवश्यकताओं में अपने धन का व्यय करने के पश्चात् शेष धन का सामाजिक एवं आर्थिक उत्कर्ष में सदुपयोग कर सकें । इससे शोषण की वृत्ति निर्मूल हो जाएगी । साथ ही ग्रामोद्धार में उनके धन का उपयोग हो सकेगा । शरीर श्रम को सिद्धान्तत: स्वीकार कर लेने पर प्रश्न उठता है कि समाज में ऐसी कोई व्यवस्था निर्मित करनी चाहिए जिससे अधिकांश व्यक्तियों को आवश्यक शरीरश्रम का साधन उपलब्ध हो सके । भारत एक गरीब देश होने के कारण ऐसे सार्वजनीन साधन का आविष्कार करना चाहिए जो न्यूनतम धन व्यय से संप्राप्त हो सके और अतिरिक्त आय वृद्धि भी कर सके जिससे वे आत्म निर्भर बन सके और दूसरी ओर फुरसद के समय का सदुपयोग होने पर

शराब, जुआ, चोरी-डकारी आदि कलुषित व्यसनों के वे शिकार न हो सकें। इस सन्दर्भ में गांधी जी के विचार से 'चरखा' और 'खादी' ही सर्वोत्कृष्ट साधन हैं। वे लिखते हैं, 'मेरा पक्का विश्वास है कि हाथ-कताई और हाथ-बुनाई के पुनरुज्जीवन से भारत के आर्थिक और नैतिक पुनरुद्धार में सबसे बड़ी मदद मिलेगी। करोड़ों आदमियों को खेती की आय में वृद्धि करने के लिए कोई सादा उद्योग ह चाहिए। बरसों पहले वह गृह उद्योग कताई का था और करोड़ों को भूखों मरने से बचाना हो तो उन्हें इस योग्य बनाना पड़ेगा कि वे अपने घरों में फिर से कताई जारी कर सकें और हर गाँव को अपना ही बुनकर फिर से मिल जाय।'[२८]

यहाँ एक जिज्ञासा होती है कि क्या इससे राष्ट्र स्वावलंबन और आर्थिक सम्पन्नता प्राप्त कर सकेगा ? क्या विशालकाय उद्योगों के द्वारा आर्थिक सम्पन्नता और भौतिक समृद्धि का विकास नहीं किया जा सकता, जैसा कि स्वातंत्र्य-प्राप्ति और गांधी-निर्वाण के पश्चात् राष्ट्र के सूत्रधारों ने सोचा और तदनुसार यत्न भी किया। यद्यपि विशालकाय उद्योगों से आर्थिक विकास होता है तथापि इससे पूंजीवाद भी बुरी तरह फैलता है। इसका सर्वाधिक भयंकर परिणाम है शोषण की सीमातीत वृद्धि। फलतः इससे अर्थ का केन्द्रीकरण हो जाता है और गरीबी बढ़ती जाती है। सम्प्रति भारत की यही स्थिति है। सत्ता और शोषण अमर्यादित स्थिति में वृद्धि कर रहा है। संभवतः यही कारण था कि गांधी जी ने बड़े-बड़े उद्योगों के द्वारा भारत के अर्थतंत्र को विकसित करना न चाहा। वे तो समाज से शोषण की प्रवृत्ति को ही निर्मूल करना चाहते थे। अतः समाज के स्वाभाविक उत्थान के लिए गृह उद्योगों के द्वारा गरीब समाज को शरीर-श्रम-प्रधान सर्वजनसुलभ साधन(चरखा) दिलाना चाहते थे। इस संदर्भ में चरखे की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए वे लिखते हैं, 'मैं चरखे के लिए इस सम्मान का दावा करता हूं कि वह हमारी गरीबी की समस्या को लगभग बिना कुछ खर्च किये और बिना किसी दिखावे के अत्यन्त और स्वाभाविक ढंग से हल कर सकता है। --- वह राष्ट्र की समृद्धि का और इसीलिए उसकी आजादी का चिन्ह है। चरखा व्यापारिक युद्ध की नहीं, व्यापारिक शांति की निशानी है। उसका सन्देश

संसार के राष्ट्रों के लिए दुर्भाव का नहीं, परन्तु सद्भाव का और स्वावलंबन का है। ---- मुझे विश्वास है कि चरखे के हर तार में शान्ति, सद्भाव और प्रेम की भावना भरी है। और चूंकि चरखे को छोड़ देने से हिन्दुस्तान गुलाम बना है इसलिए चरखे के सब फलितार्थों के साथ उसके स्वेच्छापूर्ण पुनरुद्धार का अर्थ होगा हिन्दुस्तान की सच्ची स्वतंत्रता।'[२६] इस तरह उनके विचार में चरखा व खादी ही ग्रामीण अर्थतंत्र के स्वाभाविक विकास का अत्युत्तम साधन है और प्रेम और शांति का प्रतीक भी। शरीर श्रम एवं चरखे के संदर्भ में गांधी जी के विशिष्ट दृष्टिकोण की इस पृष्ठभूमि में द्विवेदी जी के प्रसिद्ध खादी-गीत की भाव-भूमि को समझने में सुविधा होगी। प्रस्तुत गीत में कवि ने प्रमुखत: दो भाव-भूमियों को मधुर-शैली में प्रस्तुत किया है। एक ओर खादी के उत्पादन में करोड़ों गरीब और दलित लोगों के प्रस्वेदयुक्त शरीर-श्रम एवं आशा-आकांक्षाओं की भावाभिव्यक्ति हुई है, तो दूसरी ओर उसमें निहित विशुद्ध मानव-प्रेम तथा राष्ट्र-प्रेम की भावना को भी अभिव्यक्ति मिली है। फलत: कवि ने भी उसे आजादी की प्रतीक माना है। खादी-गीत की प्रथम भाव-भूमि इस प्रकार है -

'खादी से दीन विपन्नों की
उत्तप्त उसास निकलती है
जिससे मानव क्या पत्थर की
भी छाती कड़ी पिघलती है।

खादी में कितने ही दलितों के
दग्ध हृदय की दाह छिपी
कितनों की कसक कराह छिपी
कितनों की आहत आह छिपी।

खादी में कितने ही नंगों
भिखमंगों की है आस छिपी,

कितनों की इसमें भूख छिपी
कितनों की इसमें प्यास छिपी ।'[30]

गांधी जी की तरह कवि को भी विश्वास है कि खादी के माध्यम से दलितों के नियमित शरीरश्रम के कारण उनमें एक ऐसी मूक क्रांति होगी जिससे उनकी गरीबी एवं शरीरश्रम के वास्तविक महत्व को भलीभांति समझकर यदि चरखा या खादी को ग्राम-समाज क ने दैनंदिन जीवन में स्थान दे दिया तो कवि को विश्वास है कि राष्ट्र को स्वतंत्रता अवश्य प्राप्त होगी ।

'खादी ही बढ़, चरणों पर पड़
नूपुर-सी लिपट मनायेगी,
खादी ही भारत से रूठी
आजादी को घर लावेगी ।'[33]

यहाँ कवि राजनीतिक स्वतंत्रता का नहीं, आर्थिक स्वतंत्रता का संकेत करते हैं । इस तरह एक विशिष्ट चिन्तन द्वारा पुष्ट शरीरश्रम की आवश्यकता सिद्ध करने एवं ग्रामीण अर्थ व्यवस्था को सुसम्पन्न करने का खादी या चरखे का अभियान कवि को स्वीकार्य है और उसके द्वारा ग्रामोत्थान होते-होते नवीन राष्ट्र के निर्माण की संभावना पर उन्हें पूर्ण विश्वास है । गरीबी, बेकारी, जुआरी, चोरी करना, व्यभिचार आदि सामाजिक दूषणों को दूर करनेवाला यह सहज एवं सरलतम साधन अद्वितीय समन समझा गया है । चरखा या खादी आर्थिक विकास का सर्वजनसुलभ साधन है । इसके नियमित एवं भावप्रवण उपयोग से कवि को विश्वास है कि न केवल वह आर्थिक विकास का ही साधन बनकर रहेगा, अपितु सच्चे अर्थों में राष्ट्र-निर्माण का कार्य भी होगा ।

(ख) विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था :

हमने देखा कि गांधी जी ग्राम-समाज में चरखे का पुर्नप्रवेश करके फुरसद के

समय में देहातियों को आवश्यक शरीर श्रम का काम देकर उनकी आर्थिक व नैतिक उन्नति करने का एक ओर प्रयत्न करते हैं, तो दूसरी ओर वे इसी सबल शस्त्र के द्वारा वर्तमान यंत्रवाद एवं उससे निष्पन्न शोषण, धनलोभ तथा सत्ता का केन्द्रीकरण जैसे कतिपय सामाजिक रोगों का भलीभांति उपचार भी करते हैं । वे कहते हैं, `चरखे का आन्दोलन यंत्रों द्वारा होनेवाला शोषण और धन तथा सत्ता का केन्द्रीकरण रोकने के लिए किया जा रहा संघटित प्रयत्न है ।`[३४] शोषण-प्रक्रिया का विषचक्र, जैसा कि सम्प्रति हम उसका अनुभव कर रहे हैं, ऐसा दुष्ति एवं भयंकर होता है कि उसी से अन्य सभी दोषों का जन्म होता है । अत: शोषणवृत्ति को निर्मूल करना किसी भी युग की सार्वजनीन आवश्यकता बनी रहती है । तदर्थ समस्त मानव जाति इसे निर्मूल करने के लिए आर्थिक समानता के सिद्धान्त को स्वीकार करती है । किन्तु उसके परिपालन के उपायों में दृष्टिगत भिन्नता परिलक्षित होती है । आधुनिक समाजवाद एवं साम्यवाद आर्थिक समानता लाने का उपक्रम करता अवश्य है किन्तु उसमें हिंसक दबाव का विद्रोहपूर्ण मार्ग अधिक दीखता है । गांधी जी के विचार में यह दूरगामी सुख व शांति-प्रदायक मार्ग नहीं है । वे अहिंसक प्रयास में मानते हुए लिखते हैं, `मेरा दृढ़ निश्चय है कि यदि राज्य ने पूंजीवाद को हिंसा के द्वारा दबाने की कोशिश की तो वह खुद ही हिंसा के जाल में फँस जायेगा और फिर कभी भी अहिंसा का विकास नहीं कर सकेगा ।`[३५] अहिंसक उपायों द्वारा आर्थिक समानता लाने का उपाय निर्दिष्ट करते हुए वे कहते हैं कि `आर्थिक समानता की जड़ में धनिक का ट्रस्टीपन निहित है । इसलिए अहिंसक मार्ग यह हुआ कि जितनी मान्य हो सके उतनी अपनी आवश्यकताएं पूरी करने के बाद जो पैसा बाकी बचे, उसका वह प्रजा की ओर से ट्रस्टी बन जाय । अगर वह प्रामाणिकता से संरक्षक बनेगा, तो जो पैसा पैदा करेगा उसका सद्व्यय भी करेगा । जब मनुष्य अपने-आपको समाज का सेवक मानेगा, समाज के खातिर धन कमाएगा, समाज के कल्याण के लिए उसे खर्च करेगा, तब उसकी कमाई में शुद्धता आएगी । उसके साहस में भी अहिंसा होगी। इस प्रकार की कार्य-प्रणाली का आयोजन किया जाय तो समाज में बगैर संघर्ष के मूक क्रान्ति पैदा

हो सकती है ।[36] इस उद्धरण में पूंजीपतियों के लिए ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त अपनाने के लिए गांधी जी ने सर्वप्रथम आवश्यक शर्त के रूप में उन्हें सादा और पवित्र जीवन जीते हुए ईमानदारी से अर्थोपार्जन की सलाह दी है, हिंसक दबावों के प्रयास का समर्थन नहीं किया । इस प्रकार आर्थिक समानता की सिद्धि के हेतु शरीर श्रम एवं ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त अभूतपूर्व है । मार्क्सवादी चिन्तन पर आधारित साम्यवाद भी आर्थिक समानता में मानता है, किन्तु मानवप्रेम पर आधारित जीवन-विकास में माननेवाले गांधी जी ने शोषण को निर्मूल करने के उद्देश्य से एक ओर पूंजीपतियों को 'ट्रस्टीशिप' के सिद्धान्त के द्वारा मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाने का विनम्र सुझाव दिया है तो दूसरी ओर कृषकों एवं श्रमिकों को आर्थिक समृद्धि के लिए चरखे के द्वारा शरीरश्रम का महत्व समझाया है । उनका यह द्विपक्षीय जागरूक व रचनात्मक प्रयत्न समाज व राष्ट्र के सर्वाङ्गीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका उत्पन्न करेगा । बाह्य दृष्टि-से देखने पर ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त गांधी जी की मनगढ़ंत कल्पना मात्र लग सकता है, किन्तु उसकी आभ्यन्तर चिन्तन-प्रक्रिया पर दृष्टिक्षेप करने पर वह 'त्याग से भोग' की औपनिषदिक सशक्त आधारशिला पर आधृत दिखाई पड़ेगा । मानसिक त्याग के साथ संसार के सभी भोगों को भोगने का आदेश दिव्य है । यह सामाजिक तथा नैतिक उदात्त जीवन की प्रेरणा तो देता है, साथ ही समाज व राष्ट्र की समान अर्थ व्यवस्था का भी निर्देश करता है । ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त में भी त्यागपूर्ण मन:स्थिति के साथ समाज कल्याण के निमित्त धन का सद्व्यय करने का आग्रह है । अत: यह सहज सत्य है कि जो पूंजीपति ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त का पालन करता हुआ जीवनयापन करेगा, वह शोषणवृत्ति से मुक्त रहकर ग्रामीण समाज के वास्तविक उत्थान में अपना यथोचित योगदान दे सकेगा । इस तरह त्याग पर आधारित ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त प्रस्तुत करके उन्होंने अर्थ का विकेन्द्रीकरण करने का स्तुत्य प्रयास किया । समाज की अर्थ व्यवस्था का बहुत कुछ आधार शासन व्यवस्था पर भी निर्भर रहता है । शासक यदि लोभी रहा और प्रजा का शुभचिंतक न रहा तो उसकी शासन व्यवस्था शोषणकारी होगी । अतएव शासनगत शोषण को भी निर्मूल करने के लिए गांधी जीने

केन्द्रीय शासन व्यवस्था के विरुद्ध विकेन्द्रित व्यवस्था के रूप में पंचायत राज्य-व्यवस्था का अनुरोध किया । इस तरह विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था के रूप में उन्होंने ट्रस्टीशिप एवं पंचायत-राज्य के सिद्धान्तों को राष्ट्र के चरणों में प्रस्तुत किया ।

उपर्युक्त विवरण से यह तथ्य प्रकाश में आता है कि आर्थिक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर देनेवाला प्रमुख तत्व शोषवृत्ति है । इसी से व्यक्ति एवं समाज की आर्थिक समु समतुला विकृत हो जाती है । अब यह देखना है कि इस शोषणावृत्ति के विरुद्ध चलने वाले राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति द्विवेदी जी की संवेदना कैसे व्यक्त हुई है ? शोषणाविरोधी उपर्युक्त द्विमुखी आंदोलन के परिणामस्वरूप कृषकों एवं श्रमिकों में शोषकों के विरुद्ध जो चेतना म जागृत हुई थी उसका संघर्षकारी एवम् शब्दचित्र अंकित करते हुए द्विवेदी जी लिखते हैं -

'भूपतियों से कृषक लड़ रहे
धनिकों से हैं, श्रमिक युद्धरत,
जीवन नहीं, जीविका चाहिए
गरज रहा है आज लोकमत ।'[३७]

सामान्यत: गरीब व्यक्ति अधिक सहनशील होता है । अत: धनिकों एवं राजा-महाराजाओं की शोषणावृत्ति दिन प्रतिदिन सीमा का अतिक्रमण करती जाती है। किन्तु एक बार जब उन शोषितों की मर्यादा का उल्लंघन हो जाता है तब वे शोषकों के विरुद्ध अपना आक्रोश व्यक्त करते हैं । क्षुधापीड़ित उन शोषितों का संघर्ष संघर्ष द्विवेदी जी इस तरह प्रस्तुत करते हैं -

'धधकी महा उदर की ज्वाला
रणचण्डी के प्रण हर्षों में
आज राष्ट्र-निर्माण हो रहा
अपना शत-शत संघर्षों में ।'[३८]

यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि क्षुधापीड़ित व्यक्ति के लिए क्षुधापूर्ति ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण चिन्तन रहता है । उसके लिए विज्ञान, कला, दर्शन आदि का चिन्तन एवं विकास वववव नगण्य है । अत: कवि भी इस तथ्य से अपनी सहमति प्रकट करते हुए उन शोषकों की शोषणवृत्ति को निर्मूल करने और नूतन-निर्माण के कार्य में संलग्न होने का आदेश देते हुए उन क्षुधापीड़ितों से कहते हैं -

'व्यर्थ ज्ञान-विज्ञान सभी कुछ
समझो अब है आज यहाँ,
घर में जब यों आग लगी है
घर की जाती लाज जहाँ ।
+ + +
आग फूँक दो कंगालों में
कंकालों में प्राण भरो ।
चलो आज इस जीर्ण पुरातन
भव में नव- निर्माण करो ।'[३६]

ग्रामोत्थान के संदर्भ में विकेन्द्रित अर्थ व्यवस्था पर आधारित आर्थिक विकास के लिए तथा यंत्रवाद का विरोध करते हुए गांधी जी ने ग्रामोद्योगों की एक विशिष्ट योजना प्रारंभ की थी । रचनात्मक चिन्तन पर आधारित चलनेवाले इन ग्रामोद्योगों के संदर्भ में कवि की प्राय: कोई रचना प्राप्त नहीं होती । हां, खादी के द्वारा आर्थिक विकास वाले चिन्तन को उनके काव्य में अवश्य अभिव्यक्ति मिली है जिस पर पूर्ववर्ती पृष्ठों में विचार किया जा चुका है ।

निष्कर्ष :

सामाजिक एवं आर्थिक पक्षों के संदर्भ में द्विवेदी जी के काव्य का अनुशीलन करने पर यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय जागरण का कवि राजनीतिक स्तर पर

स्वतंत्रता -प्राप्ति के लिए जितना उत्साही एवं व्याकुल है, उतना ही जन-समाज के वास्तविक समाजगत एवं अर्थगत विकास का भी आकांक्षी है । कवि को पूर्ण विश्वास है कि सच्चे अर्थों में स्वतंत्रता तभी संभव है जबकि ग्रामोत्थान हो सके । भारत कृषि-प्रधान देश होने के कारण उसकी अधिकांश जनता ग्रामों में ही निवास करती है और उसके सामाजिक एवं आर्थिक विकास का मूल आधार भी ग्राम की आय पर निर्भर है। देश की रीढ़ या प्राण के समान ग्रामीण जनता का जब तक समाजगत दोषों को दूर करते हुए अर्थगत विकास कार्य सम्पन्न न इके किया जाय, तब तक सच्चे अर्थों में राष्ट्र-निर्माण का कार्य नहीं हो सकता । इस दृष्टि से द्विवेदी जी का कवि राष्ट्र-निर्माण के लिए प्रयत्नशील दिखाई पड़ता है । एक ओर वह समाजगत दोषों, रूढ़ियों, अंध-विश्वासों, अन्याय, अनीति आदि, को दूर करने के लिए ग्रामीण समाज को जागृत करता है जिससे वह बंधनमुक्त हो सके तो दूसरी ओर राष्ट्रीय आंदोलन क से सम्बंधित तात्कालिक समस्याओं, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य, हरिजनोद्धार आदि, के समाधान का विशुद्ध मानव-प्रेम पर आधारित रचनात्मक दृष्टिकोण से यत्न करता दिखाई देता है । दलितों के सामूहिक उद्धार के लिए माक्सवादी चिन्तन से भी वे प्रभावित होते दिखाई पड़ते हैं किन्तु जैसा कि लक्ष्य किया गया है, उसके करुणा-प्रधान चिन्तन के प्रति ही कवि का आकर्षण है, विद्रोहात्मक चिन्तन के प्रति नहीं । इस तरह स्वतंत्रचेता कवि गांधीवाद के अतिरिक्त मार्क्सवाद के चिन्तन से एक सीमा में प्रभावित होता दिखाई पड़ता है ।

वस्तुत: राष्ट्र के सम्मुख ग्रामीण जनता के आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित था ।मानव जीवन में अर्थ के महत्व को प्रतिपादित किया गया है। इस दृष्टि से ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी था । गांधी जी के स्वप्नों का भारत तभी निर्मित हो सकता था, जबकि इस दृष्टि से ग्रामोत्थान का एक व्यवस्थित अभियान चलाया जाय ।इस दिशा में रचनात्मक कार्यक्रमों के आधार पर जो प्रयत्न गांधी जी के द्वारा किये गये, द्विवेदी जी

के काव्य में प्राय: परिलक्षित किये जाते हैं । कृषकों एवं श्रमिकों की आयवृद्धि के लिए शरीरश्रम-प्रधान चरखे और खादी कोमहत्व देकर तथा पूंजीपतियों व साम्राज्यवादियों की शोषण नीति के विरुद्ध उनकी चेतना जागृत करते हुए उनमें आत्मबल का संचार किया गया है । उधर पूंजीपतियों की शोषणकारी नीति का उन्मूलन करने के लिए रचनात्मक दृष्टिकोण से 'ट्रस्टीशिप' के सिद्धान्त पर समाज के लिए अर्थ का उपयोग करने की नूतन जीवनदृष्टि का विकास भी कियागया है । इस तरह शोषक और शोषित दोनों के आत्मबल को जागृत करके उनमें आवश्यक सुधार का प्रयत्न किया गया है । चाहे सामाजिक विकास का प्रश्न हो, चाहे आर्थिक विकास का, द्विवेदी जी के काव्य में सर्वत्र मानवतावादी दृष्टिकोण ही परिलक्षित होता है । उनका कवि कभी भी विध्वंस या विसर्जन में विश्वास नहीं करता । वह आस्था, विश्वास एवं सर्जन का कवि है । तदर्थ उनका विश्वास रचनात्मक ही रहा है । प्राय: गांधीवादी चिन्तन पर आधारित वह सच्चे अर्थों में राष्ट्र-निर्माण का पक्षपाती है। युगीन अन्य चेतना-प्रवाहों से वह प्रभावित होता है किन्तु ऐसे प्रसंग बहुत कम हैं ।

सन्दर्भ- सूची :

१- 'यंग इंडिया' २६ मार्च १९३१

२- 'हरिजन' १ जुलाई १९४७

३- 'यंग इंडिया' ४-६-२५

४- 'युगाधार', 'आत्मबोध' (शीर्षक), पृ० १०५

५- 'पूजागीत', पृ० ८४

६- 'भैरवी', 'प्रार्थना' (शीर्षक) पृ० ९३

७- प्रभाती', 'प्रस्तावना' (शीर्षक) पृ० ५

८- 'पूजागीत' पृ० ८

९- 'युगाधार', 'कार्लमार्क्स के प्रति' (शीर्षक) पृ० १०७-१०८

१०- 'चेतना', 'यह स्वतंत्रता की अरुणाम उषा' (शीर्षक) पृ० ३०-३१

११- 'भैरवी', 'गांवों में' (शीर्षक) पृ० ९ से १४

१२- 'भैरवी', 'आज रुद्ध है मेरी वाणी' (शीर्षक) पृ० १०७

१३- वही, पृ० १०६

१४- वही, पृ० १०७-१०८

१५- 'भैरवी', 'किसान' (शीर्षक) पृ० १९

१६- 'युगाधार', 'हलधर से' (शीर्षक) पृ० ३४-३६

१७- 'युगाधार', 'हलधर से' (शीर्षक) पृ० ३६-३८

१८- वही, 'मजदूर' (शीर्षक) पृ० ४०-४१

१९- 'भैरवी', 'गांवों में' (शीर्षक) पृ० १५

२०- 'भैरवी', 'झोंपड़ियों की ओर' (शीर्षक) पृ० १८

२१- 'पूजागीत', पृ० ११-१२

२२- 'युगाधार', 'सेवाग्राम की आत्मकथा' (शीर्षक) पृ० १३-१७

२३- वही, 'बापू के प्रति' (शीर्षक) पृ० १

२४- 'युगाधार', 'सेवाग्राम' (शीर्षक) पृ० १९-२०

२५- `भैरवी`, `गांवों में` (शीर्षक) पृ० १६
२६- मोहनलाल क० गांधी, `मेरे सपनों का भारत`, गांधी जन्म शताब्दी संस्करण, पृ० २५
२७- `यंग इंडिया` २० अक्टूबर १६२१
२८- वही, २१ जुलाई १६२०
२६- वही, ८ दिसम्बर १६२१
३०- `भैरवी`, `खादी गीत` (शीर्षक) पृ० ७
३१- `भैरवी`, खादी गीत` (शीर्षक) पृ० ८
३२- वही, पृ० ६
३३- वही, पृ० ८
३४- `यंग इंडिया` १७ सितम्बर १६२५
३५- `मो०क०गांधी, `मेरे सपनों का भारत`, सम्पादक-सिद्धराज ढड्ढा, गांधी जन्म शताब्दी संस्करण, पृ० ३३-३४
३६- `हरिजन सेवक` २४ अगस्त १६४०
३७- `युगाधार`, `उगता राष्ट्र` (शीर्षक) पृ० ३१
३८- `युगाधार`, `उगता राष्ट्र` (शीर्षक) पृ० ३१
३६- वही, `नव निर्माण` (शीर्षक) पृ० ८६-८७